International Journal of Applied Research 2016; 2(12): 358-360

ISSN Print: 2394-7500
ISSN Online: 2394-5869
Impact Factor: 5.2
IJAR 2016; 2(12): 358-360
www.allresearchjournal.com
Received: 19-10-2016
Accepted: 22-11-2016

दुर्गानन्द यादव
शोधार्थी, ल.ना.मि.विश्वविद्यालय, दरभंगा, बिहार, भारत

Corresponding Author:
दुर्गानन्द यादव
शोधार्थी, ल.ना.मि.विश्वविद्यालय, दरभंगा, बिहार, भारत

सेवासदन और भारतीय स्त्री का कल, आज और कल

दुर्गानन्द यादव

सारांश
प्रेमचन्द ने सेवासदन उपन्यास में स्त्रियों की सामाजिक स्थिति पर गंभीर सवाल उठाया है। उन्होंने नारियों को भोग की मशीन और काम वासना की साधन समझने वाली प्रवृत्ति पर गहरा व्यंग्य किया है। नारी नारायणी और दुर्गा भी है। इस तथ्य को लेखक ने सेवासदन में परत–दर–परत खोल कर रखा है।

प्रस्तावना
प्रेमचंद ने सेवासदन उपन्यास में स्त्री के दुःख–दर्द, वेदना, पीड़ा आदि को कथावस्तु बनाया है। अनमेल–विवाह, अशिक्षा, पर्दाप्रथा, गरीबी, कामवासना की अतृप्ति आदि कारणों से स्त्रियाँ वेश्यावृति की ओर अग्रसर होती है। प्रश्न है क्या? देह बेचकर ही इंसान अपनी आकांक्षाएँ तृप्त कर सकते हैं। सुमन पति से तिरस्कृत होकर पद्मसिंह के यहाँ जाती है। पुनः पद्मसिंह से अपमानित होकर भोली बाई के घर पहुँच जाती है। भोली बाई बदलते समय को अंगीकार कर चुकी है।
समय की ताप और मौसम की छाप में रंगी हुई भोली बाई को निःसहाय, निरूपाय और बेवस सुमन समझ नहीं पाती है और उसकी बातों में आ जाती है।
बहरहाल सुमन सिलाई करके जीवन–यापन करने को तैयार है, भोली बाई पकी हुई तवायफ है, वह सुंदर स्त्री देह की कीमत बाजार में जानती है। इसलिए सुमन को वह मसविरा देती है– ''मेरे माँ–बाप ने मुझे एक बूढ़े मियाँ के गले बाँध दिया था। उसके यहाँ दौलत थी और सब तरह का आराम था, लेकिन उसकी सूरत से मुझे नफरत थी। मैंने किसी तरह छः महीने तो काटे, आखिर निकल खड़ी हुई। जिंदगी जैसी नियामत रो–रोकर दिन काटने के लिए नही दी गई है। जिंदगी का कुछ मजा ही न मिला, तो उससे फायदा ही क्या! पहले मुझे डर लगता था कि बड़ी बदनामी होगी, लोग मुझे जलील समझेंगे, लेकिन घर से निकलने की देरी थी, फिर तो मेरा वह रंग जमा कि अच्छे–अच्छे खुशामदे करने लगे। गाना मैंने घर पर ही सीखा था, कुछ और सीख लिया बस, सारे शहर में धूम मच गई। आज यहाँ कौन रईस, कौन महाजन, कौन पंडित ऐसा है, जो मेरे तलुवे सहलाने में अपनी इज्जत न समझें? मंदिर में, ठाकुर–द्वारे में मेरे मुजरे होते हैं। लोग मिन्नते करके ले जाते हैं। इसे मैं अपनी बेईज्जती कैसे समझूँ? अभी एक आदमी भेज दूँ, तो तुम्हारे कृष्णमंदिर के महंतजी दौड़े चले आवें। अगर कोई इसे बेईज्जत समझे? तो समझा करें।''(1)
दरअसल रूढिवादी सोच और सामंती वर्चस्वता ने स्त्रियों के जीवन का गर्क कर दिया। प्रेमचंद ने बेमेल–विवाह और परम्परागत वैवाहिक संस्था जैसी दकियानुसी प्रवृत्ति पर गहरा व्यंग्य किया है। भोली बाई के माध्यम से पद्मसिंह, महंत, माठाधीशों, गजाधर आदि को बेनकाब किया है। भोली के घर में सुमन को सिर्फ आश्रय ही नहीं मिलता है, वरन् अपनी यौनिकता, अपने स्त्रीत्व, अपने स्वाभिमान से भी रू–ब–रू होती है। वह भोली बाई को बताती है कि उसने ईसाई लेडी से शिक्षा पाई है, लेकिन शिक्षा को कोई व्यवहारिक पक्ष जान नहीं पाती है। कहना न होगा कि वह भोली बाई से प्रभावित है।
गौरतलब है कि सुमन अनमेल विवाह के खाँचे में खुद को मिस फिट पाती है। भोली बाई जानती है मछली जाल में फँस गई है– ''दो–तीन साल और कसर रह गई। इतने दिन और पढ़ लेती तो फिर यह ताक न लगी रहती। मालूम हो जाता कि हमारी जिंदगी का मकसद क्या है, हमें जिंदगी का लुत्फ कैसे उठाना चाहिए। हम कोई भेड़–बकरी तो नहीं कि माँ–बाप जिसके गले मढ़ दें, बस उसी को ही रहें। अगर अल्लाह को मंजूर होता कि तुम मुसीबतें झेलों तो तुम्हें परियों की सूरत क्यों देता! यह बेहूदा रिवाज यहीं के लोगों में है कि औरतों को इतना जलील समझते हैं, नहीं तो और मूल्कों में औरतें आजाद है, अपनी पसंद से शादी और जब उससे रास नहीं आती तो तलाक दे देती हैं। लेकिन हम लोग वही पुरानी लकीर पीटे चली जा रही हैं।(2)
मसलन स्त्रित्व को लेकर यह सचेतनता प्रेमचंद का वैशिष्ट्य है। नारियों को अपने गुणों की पहचान है, अर्थात् वह अब गुड़िया, पर्दे की रानी, माता–पिता के लिए बोझ नहीं है, वरन् अपने जीवन की

उत्तरदायित्व स्वयं उठाने के लिए कृतसंकल्पित है। मृतसत्ता जैसे संस्था और प्रथा को वह चुनौती देती है। आर्थिकाभाव में मरने के बजाए देह बेचकर जीना श्रेयस्कर समझती है। वैश्वीकरण के बाद स्त्रियों के जीवन में आमूलचूल परिवर्तन आया। आज वह ज्ञान–विज्ञान, अंतरिक्ष, प्राद्योगिकी, चिकित्सा विज्ञान, खेल–खिलाड़ी आदि क्षेत्रों नित–नई प्रतिमान स्थापित कर रही है। प्रेमचंद का सेवासदन उपन्यास आज सौ वर्ष के बाद भी प्रासंगिक है।

काशीनाथ सिंह ने स्त्री के नयी अवतार को अपने उपन्यास 'महुआचरित' में बखूबी उठाया है। 'महुआ' स्त्री–चेतना की प्रतीक है। वह माँ–बप के लिए पुत्र और पुत्री दोनों के दायित्वों का सम्यक निर्वहन करती है। वह 'सुमन' की तरह पति की प्रताड़ना सहती नहीं है, बल्कि डटकर मुकाबला करती है। महुआ, हर्षुल का प्रतिकार करती है–''

तुम हैदराबाद गई थीं? उसने शुरू किया।

''हाँ''

''साथ में साजिद भी था?''

''हाँ''

''साथ ही ठरी थीं?''

''हाँ''

एक ही कमरे में,''

''हाँ''

''कितने दिन?''

'दस–बारह दिन।''

वह चुप रहा थोड़ी देर फिर सिर उठाया। वह क्रोध से काँप रहा था।

'यह माला उसी की है?

मैंने अपने गले में पड़ी मोतियों की माला देखी। बोली–

'पसंद उसकी है, पैसा मेरा है।'

उसने झपट्टा मरकर माला खींची और गलीचे पर बिखरे दानों को रौंदना शुरू किया।

मैंने उसपर तमतमाया चेहरा देखा और हँस पड़ी।

'दो और मालाएँ हैं ब्रीफकेस में, कहो तो उन्हें भी निकाल दूँ।

वह खड़ा हो गया। चीखते हुए मेरे पेट की ओर इशारा किया–

'निकाल फेंको उसे। मुझे नहीं चाहिए!'

यह मेरे ढ़ाई महीने की गर्भ की ओर इशारा था!

मैंने उसी भाव से हँसते हुए कहा–क्यों झूठा है?''(3)

बहरहाल 'सुमन' भोली के मयावी जाल में फँस जाती है। उसके घर की साजो–सज्जा देखकर सुमन आश्चर्यचकित हो जाती हैं। भोली इस बाजार की हर नब्ज को पहचानती है, वह सुन्दर, लावण्य, कमसिन आदि स्त्री के देह की कीमत जानती है। इसलिए सुमन का ब्रेनबॉस करती हैं। शान बघेरती हुई कहती है– ''यहाँ ऐरे–गोरों की अपने की हिम्मत ही नहीं होती है। यहाँ तो सिर्फ रईस लोग आते है। बस उन्हें फँसाए रखना चाहिए। अगर वह शरीफ है, तब तो तबियत आप ही आप मिल जाती है और बेशरमी का भी ध्यान नहीं होता, लेकिन अगर उससे अपनी तबीयत न मिले तो उसे बातों में लगाये रहो, जहाँ तक उसे नोचते खसोटते बने नोचो–खसोटो। आखिर को वह परेशान होकर खुद ही चला जाएगा, उसके दूसरे भाई और आ फँसेंगे।(4)

इसके बाद सुमन उस राह पर चल निकलती है, जो उसी के शब्दों में 'कलंक की कालिख'का रास्ता है। जिस पर जाना आसान है, लौटना मुश्किल। ठीक वैसे ही जब इंसान दलदल में फँस जाता है जब निकलना चाहता है, तब और धँसता ही चला जाता है। सुमन विट्ठलदास से कहती है– ''आप सोचते होंगे कि मैं भोग–विलास की लालसा से इस कुमार्ग पर आई हूँ, पर वास्तव में ऐसा नहीं है। मैं ऐसी अंधी नहीं कि भले बुरे की पहचान न कर सकूँ। मैं जानती हूँ, कि मैंने अत्यन्त निकृष्ट कर्म किया है। लेकिन विवश थी, इसके सिवाय मेरे लिए कोई और रास्ता न था.... यद्यपि इस काजल की कोठरी में आकर पवित्र रहना अत्यन्त कठिन है, पर मैंने यह प्रतिज्ञा कर ली है कि अपने सत्य की रक्षा करूँगी। गाऊँगी, नाचूँगी और अपने को भ्रष्ट न होने दूँगी।(5)

दरअसल सतीत्व, पतीत्व और शरीर की पवित्रता बनाए रखने की धारणा हिन्दू राष्ट्र से सम्बद्ध है, जिसे सुमन बखूबी निभा ले जाती है, यह बात विचारणीय है कि सजग पाठक इससे कितनी हद तक सहमत है। सुमन के कृत से उनकी बहन की शादी टूट जाती है। प्रेमचंद ने पाखंडियों, रंडुए और दोहरी चरित्रवाले व्यक्तियों का अच्छी तरह से खबर लिया है। खाने के दाँत और दिखाने के दाँत वाली कहावत यहाँ चरितार्थ होती है। यह वही सदन है, जो लोगों की नजर बचाकर सुमन से प्रेम की भीख माँगता है, लेकिन उसकी बहन से शादी इसलिए नहीं करता है वह एक वेश्या की बहन है। वह सदन से कहती है– ''तुमने उसके साथ यह अत्याचार केवल इसलिए किया कि मैं इसकी बहन हूँ, जिसके पैरों पर तुमने बरसों नाक नगड़ी है, जिसके तलुवे तुमने बरसों सहलाए हैं, जिसके कुटिल प्रेम में तुम महीनों मतवाले हुए रहते थे। उस समय भी तुम अपने माँ–बाप के आज्ञाकारी पुत्र थे या कोई और थे? उस समय भी तो तुम वही उच्च कुल के ब्राह्मण थे या कोई और थे? तब तुम्हारे दुष्कर्मों से खानदान की नाक न कटती थी? आज तुम आकाश के देवता बने फिरते हो! अँधेरे में जूठा खाने पर तैयार, पर उजाले में निमंत्रण भी स्वीकार नही!''(6)

प्रेमचंद ने नारी के प्रति पूर्वाग्रह से ग्रसित समाज को जागृत करने का मुकम्मल प्रयास किया है। सेवासदन पर रामबिलास शर्मा ने लिख है– ''सेवा सदन की मुख्य समस्या भारतीय नारी की पराधीनता है। प्रेमचंद ने किसी तरह तमाम पुरानी सांस्कृतिक परम्पराओं को तोड़ते हुए वर्तमान समाज में नारी की पराधीनता को अपने निष्ठुर और वीभत्स रूप में चित्रित किया है।''(7)

उपन्यासकार सेवासदन उपन्यास में दहेज–प्रथा की बुराईयों को भी उठाया है। दहेज के कारण सुमन की शादी टूट जाती है। दहेज के कारण कितने घर उजर गए हैं। यह सामाजिक सड़ांध व्यवस्था लड़कियों के लिए कोढ़ के समान है, जिसने असंख्य स्त्रियों की जीवन को लील लिया है। प्रेमचंद ने जिस कुप्रथा को सेवासदन में रखा है, आज भी फल–फूल रहा है। दरअसल लोग दहेज लेना अपनी शान समझता है। इसकी भयावता इस प्रकार स्पष्ट होती है– ''एक सज्जन ने कहा–महाशय, मैं स्वयं इस कुप्रथा का जानी दुश्मन हूँ; लेकिन करूँ क्या, अभी पिछले साल लड़की का विवाह किया, दो हजार रूपये विवाह केवल दहेज में देने पड़े, दो हजार और खाने–पीने में खर्च करने पड़े, आप ही कहिए, यह काम कैसे पूरी हो?''(8)

बहरहाल प्रेमचंद ने तथाकथित ऊँची महान संस्कृति पर व्यंग्य किया है। स्त्रियों को सिर्फ और सिर्फ काम की वस्तु, सेक्स की मशीन और बिकाऊ जैसे चीजें समझने वालों को बेनकाब किया है। वह हिन्दू संस्कृति और इस्लामी संस्कृति का डंका बजाने वालों से कहते हैं– ''देखो, यह है तुम्हारी संस्कृति जो हिंदु और मुसलमान दोनों ही धर्मों की स्त्रियों से वेश्यावृति कराती है। तुम्हारे यहाँ नारीत्व का तभी सम्मान किया जाता है जब वह बिकाऊ हो।''(9)

कहना न होगा कि स्त्री की वेदना असीमित है। उनके साथ क्या अच्छा क्या बुरा? जैसे मूल्यों का कोई अर्थ नहीं रह जाता है। तथाकथित लोग तो स्त्री को सिर्फ काम की वस्तु समझते हैं। परिणामस्वरूप वह कोठा पर जाकर ही स्वतंत्र महसूस करती है और स्वच्छ हवा में साँस ले पाती है। कहने को तो पतीता, कुलटा, वेश्या कुल कलंकी है, लेकिन उनके पैरों के रज लेने के लिए बड़े–बड़े नामदार आतुर रहते हैं। विट्ठलदास एक आदर्शवादी दुनिया में रहते हैं, इसलिए जिसे वह सुमार्ग पर लाने गए हैं, उसके पीड़ा की भान ही नहीं है। अर्थात् वे जिस रोग की उपचार करना चाहते हैं, उस बीमारी का उन्हें पता ही नहीं है।

उनकी लच्छेदार उपदेश के मुकाबले में सुमन अपने जीवन का कटु सत्य पेश करती है–

''सुमन ने बात काटकर कहा, महाशय, यह आप क्या कहते हैं? मेरा तो यह अनुभव है कि जितना आदर मेरा अब हो रहा है, उसका शतांश भी तब नहीं होता था। एक बार मैं सेठ चिम्मनलाल के ठाकुरद्वारे में झूला देखने गई थी, सारी रात बाहर खड़ी भींगती रही, किसी ने भीतर न जाने दिया, लेकिन उसी ठाकुरद्वारे में मेरा गाना हुआ, तो ऐसा जान पड़ता था, मानो मेरे चरणों से वह मंदिर पवित्र हो गया।''(10)

समग्रतः प्रेमचंद ने स्त्री की समस्याओं का सम्यक मूल्यांकन किया है। सेवासदन की प्रासंगिकता इसी बातों में निहित है कि आज भी स्त्रियों की स्थिति कमोवेश वैसी ही बनी हुई है, जबकि स्त्रियाँ अपने कार्यों से लगातार महनीय और प्रशंसनीय कार्य कर रही है। वैश्वीकरण के बाद नारियों के जीवन में उल्लेखनीय बदलाव आई। अब वह गूँगी गुड़िया नहीं है, अब वह पुरुषों से दो–दो हाथ करने को सदैव तैयार रहती है और अपने लिए नित्य–नई इतिहास लिख रही है। स्त्रियाँ डंके की चोट पर अपनी मन की हसरत रखती है। निःसंदेह नारी अबला नहीं है। वह तो अपने कृत्य से समाज और राष्ट्र के समक्ष प्रतिमान स्थापित कर रही है।

संदर्भ ग्रन्थ :

1. सेवा सदन : प्रेमचंद, भारतीय ग्रंथ निकेतन, दरियागंज, नई दिल्ली, संस्करण–2006, पृ0–45
2. '' '' पृ.सं.–44
3. महुआ चरित : काशीनाथ सिंह, राजकमल प्रकाशन, पहला संस्करण–2012, पहली आवृति, 2014, पृ0–29
4. सेवा सदन : प्रेमचंद, पृ0–45
5. सेवा सदन : प्रेमचंद, पृ0–69–70
6. सेवा सदन : प्रेमचंद, पृ0–216
7. प्रेमचंद और उनका युग : राम विलास शर्मा, राजकमल प्रकाशन, पहला छात्र संस्करण–1993, सातवीं आवृत्तिः 2015
8. सेवा सदनः प्रेमचंद, पृ0–9
9. सेवा सदनः प्रेमचंद, पृ0–75
10. सेवा सदनः प्रेमचंद, पृ0–69